

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 17: गंगा का अवतरण

22 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



जब भगवान् त्रिविक्रम-रूप में समस्त लोकों को नापते हुए अपना चरण ब्रह्माण्ड के शिखर तक उठाते हैं, तब ब्रह्माण्ड के बाहर स्थित जल भीतर आकर उनके चरण-कमल को प्रक्षालित करता है और पवित्र गंगा के रूप में उतरता है — भगवान् के अपने ही चरणों से जन्मी नदी।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञप्ति में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। हमें जम्बूद्वीप का विशाल द्वीप, जिसके हृदय में स्वर्णिम मेरु स्थित है, दिखाकर श्रीशुक अब समस्त नदियों में सबसे अद्भुत — गंगा — को उसके सच्चे उद्गम तक ले जाते हैं, जो कोई पार्थिव पर्वत नहीं, अपितु स्वयं भगवान् का चरण-कमल है। हम उनका अनुगमन करेंगे जब वे ब्रह्माण्ड में

प्रकट होती हैं, प्रेम से ध्रुव के मस्तक पर धारण की जाती हैं, और संसार के देशों को आशीर्वाद देती हैं; और इलावृत की पावन भूमि में हम शान्ति से भगवान् शिव के समीप खड़े होंगे जब वे भगवान् संकर्षण की स्तुति उँडेलते हैं — यह एक ऐसा अध्याय है जो शुद्ध विस्मय से भरा है, जिसमें समस्त सृष्टि, एक राई के दाने के समान, भगवान् पर टिकी हुई दिखाई देती है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 17 (सप्तदश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: पवित्र गंगा का अवतरण और शिव की संकर्षण-स्तुति
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए; कथा के भीतर, भगवान् शिव (शंकर) भगवान् संकर्षण की स्तुति करते हैं
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषियों को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: ब्रह्माण्ड के शिखर से ध्रुव के लोक होते हुए मेरु पर्वत पर ब्रह्मा की नगरी तक, जम्बूद्वीप के वर्षों में, और इलावृत-वर्ष में
- केन्द्रीय विषय: किस प्रकार गंगा भगवान् के चरण-कमल से उतरी, मेरु पर्वत पर चार नदियों में विभक्त हुई और पृथ्वी के देशों को आशीर्वाद दिया; किस प्रकार भगवान् नारायण प्रत्येक वर्ष में विराजते हैं; और किस प्रकार भगवान् शिव इलावृत में भगवान् संकर्षण की उपासना करते हैं
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 17, श्लोक 1–24
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय से

सोलहवें अध्याय में, श्रीशुक ने राजा परीक्षित को जम्बूद्वीप के विशाल द्वीप का वर्णन सुनाया — उसके अनेक वर्ष या प्रदेश, उसके केन्द्र में कमल की कर्णिका के समान उठा हुआ स्वर्णिम मेरु पर्वत, और उसे सुशोभित करने वाली विशाल पर्वत-श्रेणियाँ, वन, सरोवर और उपवन। इस विशाल और गौरवमय भूमि को हमारे समक्ष रखकर, अब ऋषि बताते हैं कि किस प्रकार सबसे पावन नदी उस पर उतरी, और किस प्रकार स्वयं भगवान् उसके प्रदेशों में पूजे जाते हैं।

वह नदी जो भगवान् के चरण से फूटती है

श्रीशुक ने वह अद्भुत वृत्तान्त आगे कहा। बहुत पहले, जब स्वयं भगवान् विष्णु बलि के महायज्ञ में त्रिविक्रम-रूप में प्रकट हुए और उच्चतम स्वर्गों को नापने के लिए अपना चरण उठाया, तब उनके पादांगुष्ठ के नख ने अण्ड-रूप ब्रह्माण्ड के ऊपरी आवरण को भेद दिया। उस छोटे-से छिद्र से ब्रह्माण्ड के बाहर स्थित शुद्ध जल भीतर आ धँसा और सबसे पहले उसने भगवान् के चरण-कमल को प्रक्षालित किया। उस चरण की केसर-सी

अरुण रज से रँगकर, उसने एक अद्भुत शक्ति पाई — मात्र अपने स्पर्श से समस्त संसार के पापों को धो देने की, स्वयं सदा पाप से अछूती रहते हुए। क्योंकि वह सीधे भगवान् के अपने चरण से बही, इसलिए उसे उसके सब बाद के नामों से ऊपर, “भगवत्पदी” नाम दिया गया; और एक असीम काल के पश्चात् वह ध्रुव के देदीप्यमान लोक पर उतरी, जिसे विद्वान् विष्णुपद कहते हैं।

श्रीशुक उवाच

तत्र भगवतः साक्षाद्यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरेणान्तःप्रविष्टा या बाह्यजलधारा
तच्चरणपङ्कजावनेजनारुणकिञ्जल्कोपरज्जिताखिलजगदधमलापहोपस्पर्शनामला साक्षाद्भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोऽभिधीयमानातिमहता
कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवो मूर्धन्यवततार यत्तद्विष्णुपदमाहुः ॥ १ ॥

*śrī-śuka uvāca tatra bhagavataḥ sākṣād yajña-liṅgasya viṣṇor vikramato vāma-pādāṅguṣṭha-
nakha-nirbhinnordhvāṇḍa-kaṭāha-vivareṇāntaḥ-praviṣṭā yā bāhya-jala-dhārā tac-caraṇa-
paṅkajāvanejanāruṇa-kiñjalkoparañjitākṣhila-jagad-agma-malāpahopasparśanāmālā ... divo
mūrdhany avatatāra yat tad viṣṇu-padam āhuḥ*

अर्थ: श्रीशुक ने कहा: जब यज्ञस्वरूप भगवान् विष्णु ने लोकों को लाँघते हुए अपना चरण उठाया, तब उनके पादाङ्गुष्ठ के नख ने ब्रह्माण्ड के ऊपरी आवरण को भेद दिया; उस छिद्र से ब्रह्माण्ड के बाहर का जल भीतर आया और उनके चरण-कमल को प्रक्षालित किया। उस चरण की पराग-सी रज से अरुण होकर, वह मात्र अपने स्पर्श से समस्त संसार के पापों को धोने में समर्थ हो गई, स्वयं सदा शुद्ध रहते हुए, और सीधे “भगवत्पदी” नाम पाई। एक असीम काल के पश्चात् वह ध्रुव के लोक पर उतरी, जिसे विष्णुपद कहते हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 17, श्लोक 1)

ध्रुव के मस्तक पर धारण, सप्तर्षियों द्वारा अभिनन्दित

देखिए यह पावन जल प्रेम के साथ क्या करता है। उस उच्च लोक में उत्तानपाद के दृढ़व्रत पुत्र ध्रुव आज भी भगवत्पदी को अपने मस्तक पर परम श्रद्धा से धारण करते हैं, सदा स्मरण करते हुए कि इसने उनके प्रिय भगवान् के चरण-कमल को प्रक्षालित किया है; उनका हृदय निरन्तर बढ़ती भक्ति में डूबा है, उनकी अधखुली आँखों में शुद्ध प्रेम के आँसू भरे हैं, और स्मरण के आवेश में उनके रोम खड़े हो जाते हैं। और नीचे उतरते हुए, यह धारा सात महान् ऋषियों, सप्तर्षियों, तक पहुँचती है, जो उसे अपनी जटाओं की शिखा पर ग्रहण करते हैं और उसे अपने समस्त तप के परम फल के रूप में संजोते हैं, ठीक वैसे ही जैसे मोक्ष का जिज्ञासु स्वयं मुक्ति को संजोता है।

ततः सप्त ऋषयस्तत्प्रभावाभिज्ञा यां ननु तपसात्यन्तिकी सिद्धिरेतावती भगवति सर्वात्मनि

वासुदेवेऽनुपरतभक्तियोगलाभेनैवोपेक्षितान्यार्थात्मगतयो मुक्तिमिवागतां मुमुक्षव इव सबहुमानमद्यापि जटाजूटैरुद्धहन्ति ॥ ३ ॥

*tataḥ sapta ṛṣayas tat prabhāvābhijñā yām nanu tapasa ātyantikī siddhir etāvatī bhagavati
sarvātmani vāsudeve ‘nuparata-bhakti-yoga-lābhenaivopekṣitānyārthātma-gatayo muktim
ivāgatām mumukṣava iva sabahu-mānam adyāpi jaṭā-jūṭair udvahanti*

अर्थ: ये सातों महान् ऋषि, इस जल की महिमा को भली-भाँति जानते हुए भी, आज तक इसे अपनी जटाओं पर परम श्रद्धा से धारण करते हैं, इसे अपने समस्त तप का सर्वोच्च फल मानते हुए। भगवान् वासुदेव, समस्त प्राणियों की आत्मा, की अखण्ड भक्ति पा लेने के कारण, अब उन्हें किसी अन्य लक्ष्य की, यहाँ तक कि मुक्ति की भी, आवश्यकता नहीं रह जाती — क्योंकि भक्ति ने स्वयं उन्हें वह सब दे दिया है जो मुक्ति मात्र वचन देती थी, और उससे भी अधिक। (स्कन्ध 5, अध्याय 17, श्लोक 3)

यह एक ऐसा सत्य है जिसे पढ़ते हुए सहज ही आगे बढ़ जाया जा सकता है, फिर भी यही इस प्रसंग की गहनतम शिक्षा है: महान् ऋषियों के लिए, भगवान् की प्रेममयी सेवा मुक्ति की ओर बढ़ने की कोई सीढ़ी नहीं, अपितु स्वयं मुक्ति से भी बड़ी वस्तु है। मुक्ति, चाहे कितनी ही उदात्त क्यों न हो, दुःख का अन्त मात्र है; भक्ति एक सम्बन्ध का आरम्भ है — आत्मा का भगवान् के साथ, आमने-सामने, प्रेम में लौट आना। सप्तर्षियों ने उस सम्बन्ध का स्वाद चख लिया है, इसलिए भगवान् के निर्विशेष तेज में विलीन हो जाना उन्हें उसी मधुरता को खो देना प्रतीत होता है जिसे उन्होंने पाया है। इसीलिए महान् वैष्णव आचार्य कहते हैं कि भक्ति किसी और लक्ष्य की ओर जाने का साधन नहीं, वह स्वयं ही साध्य है। भक्त भगवान् की सेवा इसलिए नहीं करता कि किसी दिन मुक्त हो जाए — भक्ति, एक बार प्राप्त हो जाने पर, उस वस्तु को ही पार कर चुकी होती है जिसे मुक्ति खोज रही थी। (स्कन्ध 5, अध्याय 17, श्लोक 3)



ध्रुव के लोक में महान् भक्त प्रेम के आँसुओं के साथ पावन धारा को अपने मस्तक पर धारण करते हैं, और उनके नीचे सप्तर्षि उसे श्रद्धापूर्वक अपनी जटाओं पर ग्रहण करते हैं (श्लोक 2-3)।

मेरु पर्वत पर चतुर्था अवतरण

वहाँ से पावन नदी अपनी अद्भुत यात्रा आगे बढ़ाती है। असंख्य करोड़ों देदीप्यमान विमानों से भरे स्वर्गों से होकर, वह चन्द्रमण्डल को प्रक्षालित करती है और अन्ततः ब्रह्मा की नगरी पर उतरती है, जो स्वर्णिम मेरु पर्वत के शिखर को सुशोभित करती है। और वहाँ वह चार धाराओं में विभक्त हो जाती है — सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा — जो चारों दिशाओं की ओर दौड़ती हैं और अन्ततः समुद्र में जा गिरती हैं।

तत्र चतुर्था भिद्यमाना चतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशमभिस्पन्दन्ती नदनदीपतिमेवाभिनिविशति सीतालकनन्दा चक्षुर्भद्रिति ॥ ५ ॥

tatra caturdhā bhidyamānā caturbhir nāmabhiś catur-diśam abhispandantī nada-nadī-patim evābhiniṣīti sītā-lakanandā cakṣur bhadreti

अर्थ: वहाँ, ब्रह्मा के धाम के शिखर पर, भगवत्पदी चार धाराओं में विभक्त हो जाती है, जो चार नामों से — सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा — चारों दिशाओं में बहती हैं और अन्ततः समुद्र में प्रवेश करती हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 17, श्लोक 5)



स्वर्णिम मेरु पर्वत के शिखर पर ब्रह्मा की नगरी में, उतरती हुई गंगा चार देदीप्यमान धाराओं में बँटकर संसार की चारों दिशाओं की ओर बहती है (श्लोक 4-5)।

चार महान् नदियाँ और कर्मभूमि

श्रीशुक ने इन चारों नदियों के मार्ग बताए। सीता गन्धमादन पर्वत पर गिरती है और पूर्व की ओर भद्राश्व-वर्ष से होकर बहती है; चक्षु माल्यवान् पर्वत पर उतरती है और पश्चिम की ओर केतुमाल की भूमि की ओर बढ़ती है; और भद्रा उत्तर की ओर शिखर से शिखर लाँघती हुई, श्रृंगवान् के शिखर से उत्तर-कुरुओं की ओर बहती है। और अलकनन्दा ब्रह्मा की नगरी से दक्षिणाभिमुख होकर निकलती है, अनेक शिखरों को पारकर हेमकूट पर्वत तक जा पहुँचती है, वहाँ से प्रचण्ड वेग के साथ हिमालय की चोटियों पर गिरती है, और अन्ततः भारतवर्ष को सींचती हुई दक्षिणी सागर में जा मिलती है। और श्रीशुक कहते हैं कि इस पावन प्रवाह में डुबकी लगाने वाले को अश्वमेध और राजसूय जैसे महान् यज्ञों का पुण्य-फल हर एक कदम पर सुलभ हो जाता है।

तथैवालकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनाद्बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य हेमकूटाद्वैमकूटान्यतिरभसतररंहसा लुठयन्ती भारतमभिवर्षं दक्षिणस्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति यस्यां स्नानार्थं चागच्छतः पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराजसूयादीनां फलं न दुर्लभमिति ॥ ९ ॥

tathaivā-lakanandā dakṣiṇena brahma-sadanād bahūni giri-kūṭāny atikramya hemakūṭād dhaimakūṭāny ati-rabhasatara-raṁhasā luṭhayantī bhāratam abhivarṣaṁ dakṣiṇasyāṁ diśi jaladhim abhipraviśati yasyāṁ snānārthaṁ cāgacchataḥ puṁsaḥ pade pade 'śvamedha-rājasūyādīnāṁ phalaṁ na durlabham iti

अर्थ: इसी प्रकार अलकनन्दा ब्रह्मा की नगरी से दक्षिण की ओर बहती है, हेमकूट से हिमालय तक अत्यन्त वेग से लुढ़कती है, और भारतवर्ष से होकर दक्षिण समुद्र में प्रवेश करती है; और जो उसमें स्नान करने जाता है, उसे अश्वमेध, राजसूय तथा अन्य महान् यज्ञों का फल पग-पग पर प्राप्त होता है। (स्कन्ध 5, अध्याय 17, श्लोक 9)

इन चारों के अतिरिक्त, प्रत्येक वर्ष में सैकड़ों अन्य छोटी-बड़ी नदियाँ बहती हैं, जो सब मेरु और अन्य पर्वतों से जन्मी हैं। और इन समस्त प्रदेशों में से, विद्वान् केवल भारतवर्ष को कर्मभूमि घोषित करते हैं — वह पावन क्षेत्र जहाँ आत्मा अपने कर्मों से अपना भाग्य गढ़ सकती है। शेष आठ, वे कहते हैं, वे स्थान हैं जहाँ स्वर्ग अर्जित करने वाले अपने शेष पुण्य को भोगने आते हैं; वे, मानो, पृथ्वी के दिव्य उपवन हैं।



अलकनन्दा हेमकूट से हिमालय तक गरजती हुई उतरती है और भारतवर्ष से होकर बहती है, जहाँ भक्त उसके पावन जल में स्नान करने आते हैं (श्लोक 6-9)।

धन्य वर्ष और सदा-उपस्थित भगवान्

श्रीशुक इन भूमियों की धन्यता पर प्रेमपूर्वक ठहरे। इनमें बसने वाले देवतुल्य मनुष्य दस हजार वर्ष जीते हैं, दस हजार हाथियों के बल और वज्र-सी दृढ़ देह से युक्त, जिनकी युवावस्था कभी नहीं ढलती; और घाटियों में देवताओं के स्वामी उन उपवनों में, जो पुष्पों से लदे हैं, और उन सरोवरों के बीच, जो हंसों से गुंजित हैं, सुकोमल क्रीड़ा में रमते हैं। फिर भी इन भूमियों की सच्ची महिमा उनका सौन्दर्य नहीं, अपितु उनका अतिथि है — क्योंकि सभी नौ वर्षों में परमपुरुष स्वयं भगवान् नारायण आज भी अपनी अनेक अभिव्यक्तियों में साक्षात् विराजते हैं, और वहाँ केवल एक ही प्रयोजन से रहते हैं: अपने भक्तों पर कृपा बरसाने के लिए।

नवस्वपि वर्षेषु भगवान्नारायणो महापुरुषः पुरुषाणां तदनुग्रहायात्मतत्त्वव्यूहेनात्मनाद्यापि सन्निधीयते ॥ १४ ॥

navasv api varṣeṣu bhagavān nārāyaṇo mahā-puruṣaḥ puruṣāṇāṁ tad-anugrahāyātma-tattva-vyūhenātmanādyāpi sannidhīyate

अर्थ: इन सभी नौ वर्षों में परमपुरुष भगवान् नारायण आज भी अपनी विविध अभिव्यक्तियों में, कृपावश, अपने भक्तों को आशीर्वाद देने के लिए विराजते हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 17, श्लोक 14)



जम्बूद्वीप के नौ धन्य वर्षों में परमभगवान् नारायण अपने अनेक रूपों में विराजते हैं, उन पर कृपा बरसाने के लिए उपस्थित जो उनसे प्रेम करते हैं (श्लोक 11-14)।

इलावृत में भगवान् शिव की संकर्षण-उपासना

तब श्रीशुक इलावृत के पावन प्रदेश तक, और उसके एकमात्र, अकेले स्वामी तक आए। उस भूमि में एक को छोड़कर कोई पुरुष पैर नहीं रख सकता — भगवान् शंकर, महान् शिव — क्योंकि उस स्थान पर एक शाप है, कि जो भी पुरुष प्रवेश करता है वह स्त्री बन जाता है; और श्रीशुक ने उस शाप की कथा को उसके उचित स्थान पर कहने का वचन दिया। वहाँ, गोस्वामिनी पार्वती के परिकर की असंख्य स्त्रियों से सेवित, भगवान् शिव निरन्तर उपासना में निवास करते हैं। और महान् स्वामी किसकी उपासना करते हैं? वे अपने ही स्रोत की आराधना करते हैं — भगवान् की चौथी अभिव्यक्ति की, वह रूप जो संहार का अधिष्ठाता है और संकर्षण नाम से जाना जाता है; क्योंकि परमपुरुष वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और संकर्षण-रूप में प्रकट होते हैं। उस देदीप्यमान रूप को अपने हृदय में स्थिर करके, भगवान् शिव यह प्रार्थना उच्चारित करते हैं।

श्रीभगवानुवाच

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसङ्ख्यानायानन्तायाव्यक्ताय नम इति ॥ १७ ॥

śrī-bhagavān uvāca oṃ namo bhagavate mahā-puruṣāya sarva-guṇa-saṅkhyānāyānantāyāvyaktāya nama iti

अर्थ: भगवान् शिव ने प्रार्थना की: ॐ। परमपुरुष भगवान् विष्णु को नमस्कार — समस्त गुणों के आश्रय, अनन्त और अव्यक्त स्वरूप को। (स्कन्ध 5, अध्याय 17, श्लोक 17)

श्लोक-दर-श्लोक भगवान् शिव की स्तुति और ऊँची उठती है। वे उस भगवान् की आराधना करते हैं जिनके चरण-कमल सबकी शरण हैं, जो अपने भक्तों को अपना रक्षक रूप प्रकट करते हैं और उनके पुनर्जन्म का अन्त करते हैं, जबकि जो विमुख हैं उनके लिए सांसारिक अस्तित्व का चक्र चलता रहता है। वे विस्मित होते हैं कि भगवान् की दृष्टि इन्द्रिय-विषयों से कभी रँगती नहीं, यद्यपि वे सब कुछ देखते हैं — जबकि उनकी अपनी दृष्टि ने आज तक क्रोध के वेग को पूरी तरह नहीं जीता। भगवान् शिव सिखाते हैं कि जो कोई सचमुच अपनी इन्द्रियों पर विजय पाना चाहता है, उसे उन्हीं निर्लिप्त चरण-कमलों की शरण लेनी होगी, क्योंकि इन्द्रियाँ भगवान् की कृपा के अतिरिक्त और किसी के आगे नहीं

झुकतीं। वे बताते हैं कि वेद भगवान् की सृष्टि, पालन और संहार का स्रोत कहते हैं, यद्यपि वे स्वयं नित्य और उनसे परे हैं; उनके सहस्र सर्प-फणों के आधार पर समस्त भूमण्डल एक राई के दाने के समान टिका है, इतने हल्के-से कि भगवान् उसका अनुभव तक नहीं करते। शिव स्वीकार करते हैं कि उनकी अपनी सृजन-शक्ति भी केवल एक वरदान है, और वे तथा समस्त सृजन-शक्तियाँ भगवान् के वश में डोरी से बँधे पक्षियों के समान हैं, जो केवल उनकी कृपा से इस जगत् को रचती हैं। और वे वहीं समाप्त होते हैं जहाँ समस्त सच्ची प्रार्थना समाप्त होनी चाहिए — समर्पण में।

यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीमायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः ।

न वेद निस्तारणयोगमञ्जसातस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ॥ २४ ॥

*yan-nirmitām karhy api karma-parvaṇīm māyām jano 'yam guṇa-sarga-mohitaḥ na veda
nistāraṇa-yogam añjasā tasmai namas te vilayodayātmane*

अर्थ: तीनों गुणों की क्रीड़ा से मोहित होकर, यह देहधारी जीव स्वयं कभी उस माया को नहीं जान सकता जिसे आपने रचा है, जो उसे कर्म की गाँठों से बाँधती है, उससे पार होने के उपाय को तो और भी कम। और चूँकि समस्त लोकों की सृष्टि और प्रलय आपसे भिन्न कुछ नहीं, इसलिए आपको नमस्कार, जिनमें समस्त वस्तुएँ उदित होती और विलीन होती हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 17, श्लोक 24)



इलावृत की पावन भूमि में, गोस्वामिनी पार्वती के परिकर से सेवित, भगवान् शिव भगवान् संकर्षण के देदीप्यमान रूप को अपने हृदय में स्थिर करके अपनी स्तुति अर्पित करते हैं (श्लोक 16-24)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

गंगा इसलिए पावन है क्योंकि वह भगवान् से बहती है। उसकी पवित्र करने की शक्ति उसके जल से नहीं, अपितु उस चरण-कमल से आती है जिसे उसने सबसे पहले प्रक्षालित किया। इसीलिए वह भगवत्पदी कहलाती है — और इसीलिए जिसने भगवान् को छुआ है, उसका स्पर्श समस्त संसार को शुद्ध कर सकता है।

प्रेम उसे संजोता है जिसे भगवान् ने छुआ है। ध्रुव पावन धारा को अपने मस्तक पर धारण करते हैं, और सप्तर्षि अपनी जटाओं पर, उसके अपने लिए नहीं अपितु इसलिए कि उसने भगवान् के चरण को प्रक्षालित किया। भक्त का हृदय प्रियतम के प्रत्येक चिह्न से चिपक जाता है।

शुद्ध भक्ति मुक्ति की ओर जाने वाला मार्ग नहीं — वह मुक्ति से भी बढ़कर है। सप्तर्षि, भगवान् वासुदेव के प्रति अखण्ड प्रेम का स्वाद चख चुकने के कारण, अब संसार से मुक्ति नहीं चाहते, क्योंकि भक्ति उन्हें पहले ही वह दे चुकी है जो मुक्ति मात्र वचन दे सकती थी — स्वयं भगवान् की समीपता।

भारतवर्ष अमूल्य कर्मभूमि है। समस्त धन्य वर्षों में से, केवल हमारी भूमि वह क्षेत्र है जहाँ आत्मा अपना भाग्य गढ़ सकती है और मुक्ति की ओर मुड़ सकती है — इस जीवन की कठिनाई ही उसका छिपा वरदान है।

भगवान् सर्वत्र उपस्थित हैं, कृपा देने के लिए। सभी नौ वर्षों में नारायण विराजते हैं, और केवल एक प्रयोजन से — उन पर कृपा करने के लिए जो उनसे प्रेम करते हैं।

सबसे महान् भी परमेश्वर के समक्ष झुकते हैं। भगवान् शिव, जिन्हें समस्त लोक पूजते हैं, अपने दिन भगवान् संकर्षण की विनम्र उपासना में बिताते हैं, यह स्वीकार करते हुए कि उनकी अपनी सृजन-शक्ति भी एक उधार का वरदान है। सच्ची महानता समर्पण की गहराई से मापी जाती है।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

श्रीशुक यहाँ हमारे लिए जो चित्र रचते हैं उसमें कुछ अभिभूत कर देने वाला है — एक ऐसी नदी जो किसी पर्वत में नहीं, अपितु भगवान् के चरण में आरम्भ होती है, और फिर भी एक अकेले भक्त के मस्तक पर काँपती कोमलता से धारण की जाती है। यह हमें बताता है कि पवित्रता कोई स्वयं में वस्तु नहीं है; वह भगवान् की समीपता है। जल भगवान् के चरण का स्पर्श पाकर पावन हुआ; हमारे अपने हृदय उसी सरल स्पर्श से शुद्ध होते हैं — भगवान् के चरणों को, प्रेम और स्मरण में, छूने से। और फिर हमें सबसे विनम्र कर देने वाला दृश्य दिया जाता है: भगवान् शिव, जिन्हें समस्त विश्व पूजता है, हाथ जोड़े हृदय से भगवान् संकर्षण के समक्ष खड़े और स्वयं को डोरी से बँधा प्राणी कहते हुए, जो भगवान् की कृपा बिना उनकी माया तक को नहीं जान सकते। यदि महान् शिव इतना नीचे झुकते हैं, तो हम किस अभिमान को पकड़े रह सकते हैं? हम केवल वही चाहते रह जाते हैं जो पावन नदी चाहती है — भगवान् के चरणों में गिरना, उनके स्पर्श से रँग जाना, और उस आशीर्वाद को, जैसे ध्रुव करते हैं, सदा अपने मस्तक पर धारण करना।

एक दैनिक भक्ति-साधना

आज, पावन गंगा को और उसके सच्चे आरम्भ को स्मरण कीजिए। जब आप स्नान करें, या जल पीएँ, या केवल अपने हाथ धोएँ, तो एक श्वास के लिए रुकिए, जल को उस नदी का स्मरण कराने दीजिए जो भगवान् के अपने चरण से बहती है, और मन ही मन कहिए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” और दिन में एक बार, भगवान् शिव के अनुसरण में, अपना शीश झुकाइए — यदि देह से नहीं तो हृदय से — परमभगवान् के समक्ष, अपने छोटे-से छोटे कार्य और बड़ी-से बड़ी चिन्ता को समान रूप से उन्हें अर्पित करते हुए। इस प्रकार एक कटोरी जल और एक झुका हुआ शीश भी शुद्ध भक्ति के कर्म बन जाते हैं।

उपसंहार

पंचम स्कन्ध का सत्रहवाँ अध्याय हमारी दृष्टि को भगवान् की सृष्टि के आश्चर्यों की ओर, और उससे भी ऊँचे, स्वयं भगवान् की ओर उठाता है। श्रीशुक ने त्रिविक्रम के चरण-कमल से पावन गंगा के अवतरण को, ध्रुव और सप्तर्षियों द्वारा उसके स्नेहमय स्वागत को, मेरु पर्वत पर उसके सीता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा में चतुर्धा विभाजन को, और संसार के देशों से उसके प्रवाह को वर्णित किया — भारतवर्ष को एकमात्र सच्ची कर्मभूमि के रूप में सम्मानित करते हुए। प्रत्येक वर्ष में परमभगवान् नारायण अपने भक्तों को आशीर्वाद देने विराजते हैं; और अन्ततः, इलावृत में, महान् भगवान् शिव भगवान् संकर्षण की निरन्तर उपासना करते हैं, उस एक के समक्ष समर्पण की स्तुति में समाप्त होते हुए जिनमें समस्त लोक उदित होते और विलीन होते हैं। यह एक ऐसा अध्याय है जो अभिमान के प्रत्येक चिह्न को गला देता है और हृदय में केवल यही लालसा छोड़ जाता है कि वह भी, पावन नदी के समान, भगवान् के चरणों में गिर पड़े।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, पंचम स्कन्ध, सप्तदश अध्याय, “An account of the descent of the holy Ganga and a song of praise to Lord Sankarsana by the divine Sankara।”
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-17-descent-of-the-ganga-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट